आदिवासी ही नहीं, आदि स्वतंत्रता सेनानी थे तिलका मांझी

डॉ सी.पी. गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
स्वामी विवेकानंद शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हरदा मध्यप्रदेश
मो.नं.- 7974824118
Email-chandrapal.gupta@yahoo.com

सारांश :- *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास यद्यपि कुछ गिने-चुने नेताओं के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहा है, किंतु वास्तविकता यह है कि भारत की आजादी में अनगिनत ऐसे लोगों का योगदान रहा है, जिन्हें इतिहास में नेपथ्य में ढकेल दिया गया है। आदिवासियों का स्वतंत्रता संघर्ष, भारत के अन्य लोगों की तुलना में अलग था, इन्हें केवल अंग्रेजों से ही नहीं अपितु इस देश के जमीदारों और साहूकारों से भी संघर्ष करके आजादी प्राप्त करनी थी। एक बात यहां और महत्वपूर्ण हो जाती है कि आदिवासियों ने बहुत जल्दी अंग्रेजों की नीति और नीयत को समझ लिया था और उन्होंने अंग्रेजों का विरोध करना प्रारंभ कर दिया था। आदिवासी जंगल, जल, जमीन और अस्मिता, अस्तित्व तथा आजादी के लिए सतत संघर्ष करते रहे। इन लोगों से भारत के अन्य लोगों ने सबक नहीं लिया अन्यथा अंग्रेजों को 1947 से पूर्व ही खदेड़ा जा सकता था।*

मुख्य कुंजी शब्द :- उ वादी, उत्पीड़न, जमीदार, साहूकार, पहाड़िया, झूम खेती, जंगल, जल, जमीन मुखिआ आदि।

भूमिका :-

उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध भारतवासियों का संघर्ष अपनी अस्मिता, अधिकार और अस्तित्व के साथ-साथ अपने अतीत के गौरव, व्यवस्थाओं, संस्कृति एवं परंपराओं को सुरक्षित और संरक्षित रखने के लिए आक्रमणकारियों के विरुद्ध संघर्ष था। भारत अनादि काल से ही शांति प्रिय देश रहा है। ना तो हमने कभी किसी दूसरे देश पर बेवजह आक्रमण किया और ना ही कभी किसी के आक्रमण को बर्दाश्त किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत की भौगोलिक परिस्थितियां ही ऐसी रही हैं कि हमें कभी किसी अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई, जबकि भारतीय भूमि की उर्वराता, उत्पादकता और संपन्नता आदिकाल से ही बाह्य आक्रांताओं के लिए आकर्षण का केंद्र रही है और इसीलिए भारत तभी से आक्रांताओं के बेवजह आक्रमणों का शिकार हुआ, किंतु वह उन आक्रमणों का सामना करते हुए डटा रहा, उसने ना तो कभी मन से हार मानी और ना ही कभी उनके सम्मुख झुका।

यद्यपि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के उद्देश्य से भारत में प्रविष्ट हुई थी, किंतु उसने भारतीयों की आपसी प्रतिद्वंद्विता को देखते हुए, उसने राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के सपने देखने प्रारंभ कर दिए। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का अंकुरण 1757 ई. के प्लासी युद्ध के साथ ही हो गया था और उसने सुदृढ़ता 1764 के बक्सर युद्ध से प्राप्त की। 1757 ई. से लेकर 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारत का कोई ना कोई क्षेत्र या समुदाय अंग्रेजों को उनकी शोषणकारी, दमनकारी और लालची प्रवृत्ति को चुनौती प्रस्तुत करता रहा है।

यद्यपि भारत के अधिकांश इतिहासकारों ने आजादी की लड़ाई में कुछ गिने-चुने नेताओं का ही, वर्णन किया है, किंतु आज़ादी की लड़ाई में बिना डर के सत्याग्रहियों एवं क्रांतिकारियों को भोजन, पानी, रसद, आश्रय, चारपाइयां आदि उपलब्ध कराने वालों को इतिहास के हासिए पर ढ़केल दिया गया है।

गिने-चुने नेताओं का महिमामंडन और चित्रण, केवल भारतीय इतिहास का ही प्रश्न नहीं रहा है, बल्कि विश्व इतिहास भी ऐसे अनेक उदाहरणों से पटा पड़ा है, जैसे- संयुक्त राज्य अमेरिका की क्रांति में जॉर्ज वाशिंगटन का, इटली के एकीकरण में गैरीबाल्डी, मैजिनी और कैबूर का, सोवियत संघ की साम्यवादी क्रांति में लेनिन का, 1949 ई. की चीनी साम्यवादी क्रांति में माओ-त्से-तुंग का और वियतनाम की आजादी में हो-ची-मिन्ह का ही योगदान, हमें अधिकांश पाठ्य पुस्तकों में दृष्टिगोचर होता है, किंतु इसका यह आशय कदापि नहीं है कि अन्य लोग केवल मूकदर्शक थे। हम सभी जानते हैं कि **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता** अर्थात इन नेताओं के पीछे एक बहुत बड़ा जन-सैलाब था, जो सफलता की सीढ़ियां चढ़ने में मददगार सिद्ध हुआ था। यह एक अलग बात है कि तत्कालीन इतिहास में सभी का विस्तृत विवरण नहीं दिया गया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की जब भी बात होती है, अक्सर हम यही लिखते-पढ़ते आ रहे हैं कि अंग्रेजों की राजनैतिक, सैनिक, सामाजिक, आर्थिक शोषण और धार्मिक उत्पीड़न से तंग आकर विद्रोह का बिगुल बजाने वाला 34 वीं रेजिमेंट, बैरकपुर का **अमर शहीद मंगल पांडे** था, जिसने 1856 ई. में ब्रिटिश सेना में शामिल की गई एनफील्ड राइफल में प्रयुक्त होने वाले चर्बी लगे कारतूसों का उपयोग करने से मना करते हुए, 29 मार्च 1857 ई. को अंग्रेज एड्जूटेंट लेफ्टिनेंट बाग्ग की हत्या के साथ ही मेजर सार्जेण्ट ह्यूरसन को गोली मार दी, परिणामस्वरूप औपनिवेशिक सरकार ने उन्हें 8 अप्रैल, 1857 ई. को फांसी पर लटका दिया था। यद्यपि मंगल पांडे का योगदान अविस्मरणीय है, किंतु उससे लगभग 90 वर्ष पूर्व ही देश की आजादी की यज्ञ वेदी में अपने प्राणों की पहली आहुति देने का श्रेय 1784 ई. में राजमहल की पहाड़ियों के पहाड़िया आदिवासी **जबरा पहाड़िया या तिलका मांझी** को है। जिसने अपने भोले-भाले आदिवासियों को ना केवल अंग्रेजों के विरुद्ध बल्कि अंग्रेजों द्वारा तैयार किए गए उत्पीड़न और शोषणकारी अभिकरणों जैसे कि जमींदार, साहूकार व उसके अधिकारी वर्ग के विरुद्ध खड़ा कर दिया था।

1764 ई. के बक्सर युद्ध ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को एक व्यापारिक शक्ति के स्थान पर उसे भारत की राजनीतिक शक्ति बना दिया था और इसके पश्चात उसने भारत के राजे-रजवाड़ों से ऐसी संधि और सनदें प्राप्त करनी प्रारंभ कर दीं, जिससे कि उसकी हैसियत और औहदा दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला गया। इसी कड़ी में कंपनी ने तत्कालीन मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से 1765 ई. में इलाहाबाद की संधि द्वारा **बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करके** बंगाल, बिहार और उड़ीसा में लॉर्ड क्लाइव ने द्वैध शासन का प्रारंभ किया, जिसके माध्यम से कंपनी ने भारत में आर्थिक शोषण के युग का श्री गणेश किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक और शोषणकारी कंपनी के द्वारा अलग-अलग राज्यों में शोषण की अलग-अलग विधियां और रणनीतियां अपनाई गईं, जैसे कि बंगाल के गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली द्वारा सहायक संधि और भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी द्वारा गोद निषेध प्रथा अधिनियम या हड़प नीति आदि।

जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में अपने शोषणकारी षडयंत्रों को प्रारंभ करने जा रही थी, तभी अंग्रेजों की इस कुचक्र और शोषणकारी प्रवृत्ति को सबसे पहले पहचाना राजमहल के पहाड़िया आदिवासियों ने, और उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट होकर विद्रोह किया। यद्यपि यह विद्रोह असफल रहा, किंतु उन्होंने भारत में अंग्रेजों

के विरुद्ध पहली चुनौती पेश की, जो हमेशा अविस्मरणीय रहेगी और 1947 ई. में आजादी प्राप्त होने तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों के भारतीयों द्वारा समय-समय पर अंग्रेजों के समक्ष चुनौतियां पेश की जाती रही।

जब हम18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के राजस्व अभिलेखों का अवलोकन करते हैं तो पता पड़ता है कि इन लोगों को 'पहाड़िया' कहने के पीछे क्या रहस्य है? वे वर्तमान झारखंड की राजमहल की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द रहा करते थे और भारत सहित विश्व के अन्य आदिवासियों की भांति वे जंगल, जमीन और जानवरों पर अपना नैसर्गिक अधिकार मानते थे और इन्हीं से अपना जीवन निर्वाह करते थे। वे प्रकृति की गोद में रहकर प्रकृति को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाते थे। उनकी आवश्यकताएं अत्यंत सीमित थीं। इन सीमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वे झूम खेती या स्थानांतरणशील कृषि करते थे। । वे जंगल के छोटे से हिस्से में छोटे-छोटे पेड़-पौधों, झाड़-झंकार व घास-फूँस में आग लगा देते थे और उसकी अवशिष्ट राख, जोकि पोटाश के कारण उपजाऊ होती थी, में कुदाल से जमीन को थोड़ा खुरच करके 2-3 साल तक खेती करते थे। जब भूमि की उर्वरता कम हो जाती थी, तब वे उस स्थान को परती छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे, जिससे कि यह भूमि पुनः 2-4 वर्षों के उपरांत हरी-भरी और उर्वरता युक्त हो जाए। झूम खेती उनके जीवन निर्वाह का मात्र साधन थी, इसमें आवश्यकता से अधिक उत्पादन नहीं हो सकता था। अन्य आदिम जातियों की भांति पहाड़िया जनजाति भी धरती माता पर हल चलाना अपराध और पाप समझते थे। वास्तव में आदिम जातियों में झूम खेती किए जाने का प्रमुख कारण अंधविश्वास और तकनीकी कमी भी था।

लालच तथा प्रकृति के अंधाधुंध शोषण से वे पूरी तरह से मुक्त थे। वे प्रकृति से उतना ही, ग्रहण करते थे, जितने की उन्हें दैनिक जीवन में आवश्यकता होती थी।

अपनी स्थानीय आवश्यकताओं और जीवन निर्वाह हेतु पहाड़िया जनजाति के लोग अपनी इस खेती से खाने के लिए कुछ दालें, ज्वार-बाजरा और अन्य फसलें उगाते थे। इन जंगलों से पहाड़िया लोग अपने भोजन बनाने के लिए जलावन लकड़ी और झोपड़ी बनाने के लिए लकड़ी प्राप्त करते थे। पहाड़िया लोग अपनी खेती के आसपास की परती भूमि में उग आयी हरी घास, अपने पशुओं को घास खिलाने के काम में लेते थे। पहाड़िया लोगों के मकान इमली के पेड़ों के बीचों-बीच और आम के पेड़ों के नीचे अमराई में बने होते थे। पहाड़िया लोग गर्मियों में विशेषकर आराम के लिए अमराई का उपयोग करते थे।

पहाड़िया अपने भोजन-पानी के लिए जंगलों से महुआ के फूल(महुआ) इकट्ठा करते थे, वस्तु विनिमय और बेचने के लिए रेशम के कोया, राल और काठकोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ भी इकट्ठा करते थे। पेड़ों के नीचे जो छोटे-छोटे पौधे उग आते थे या परती जमीन पर जो घास-फूस की हरी चादर-सी बिछ जाती थी, उसे वे पशुओं के लिए चरागाह के रूप में उपयोग करते थे। वे जंगली पशुओं का शिकार करके अपना जीवन यापन भी करते थे।

पहाड़िया एकांगी जीवन जीने पर विश्वास करते थे, ना तो वे बाहरी लोगों के संपर्क में स्वयं जाते थे और ना ही उन्हें बाहरी लोगों द्वारा अपने जीवन में प्रवेश बर्दाश्त था। वे बाहरी लोगों को **दिकू** कहते थे। सामान्यतः **दिकू** (दिक्कत पैदा करने वाला) शब्द का अर्थ है, जो जीवन में कष्ट या दर्द देता है और एकांत एवं शांतिपूर्ण जीवन में खलल पैदा करता है। एक प्रकार से दिकू शब्द का आशय हुआ सभी परेशानियों का मूल कारण, जो उनके निजी जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयां और विपदाएं पैदा करता है। दिकू शब्द दिल की धड़कन डिक्डिक की आवाज से उत्पन्न हुआ है।

प्रत्येक कबीले का एक मुखिया होता था, जो अपने लोगों की समस्याओं को सुलझाता था और उन्हें एकता के सूत्र में पिरो कर भी रखता था और यदि कभी दूसरे कबीलों या मैदानी क्षेत्रों के निवासियों से उनकी लड़ाई होती थी तो यही मुखिया उनका नेतृत्व भी करता था।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का प्रारंभ हो चुका था, परिणामस्वरूप उन्हें कच्चे माल की आवश्यकता थी, जबकि भौगोलिक दृष्टि से ब्रिटेन एक अत्यंत छोटा और द्वीपीय राष्ट्र है, उसके पास आधुनिक मशीनें और तकनीकी तो थी, किंतु कच्चे संसाधनों का सर्वथा अभाव था, वह अपनी मशीनों की आवश्यकता के अनुसार कच्चा माल प्राप्त करने और निर्मित माल को बेचने के लिए उपनिवेशों की तलाश में था। इसी कड़ी में उसने भारत में अपने उपनिवेश स्थापित करने की प्रक्रिया प्रारंभ की। यद्यपि अंग्रेजों का भारत में आने का प्रारंभिक उद्देश्य व्यापार था, किंतु उन्होंने जब यहां के राजे-रजवाड़ों की आपसी फूट और प्रतिद्वंदिता देखी तो वे राजनीति में भी हस्तक्षेप करने लगे। जिसका स्पष्ट प्रमाण बंगाल था, जहां अंग्रेजों ने नवाब सिराजुद्दौला के विरोधियों को अपने पक्ष में करके 1757 ई. की प्लासी की लड़ाई में उसे परास्त कर सत्ता से अलग कर अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

अंग्रेजों ने यहां के संसाधनों का उपयोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए किया। उन्होंने ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति से विकसित हुई मशीनों, ब्रिटिश उपनिवेशों और ब्रिटेन की आबादी की मांग के अनुसार यहां की कृषि भूमि और अन्य संसाधनों का उपयोग करना प्रारंभ कर दिया। भारत का व्यापार और कृषि, अब केवल ब्रिटेन के उद्योग धंधों को लाभ पहुंचाने के लिए ही प्रयुक्त होने लगा। अंग्रेजों ने भारत में अपने देश की मांग के अनुसार भारतीय कृषकों को कृषि करने के लिए बाध्य करना प्रारंभ किया और साथ ही कृषि भूमि का विस्तार करना भी प्रारंभ कर दिया। भारत में बड़ी मात्रा में जंगली, परती भूमि पड़ी हुई थी, जहां भारत के मूलनिवासी अपना जीवन निर्वाह निर्बाध रूप से बिना किसी के हस्तक्षेप के कर रहे थे।

अंग्रेजों का मानना था कि अपराधी जंगलों में शरण प्राप्त करते हैं, भविष्य के अनेक अध्ययनों से यह तर्क निराधार सिद्ध हो चूका है। उनका वास्तविक उद्देश्य भारतीय संसाधनों का शोषण करना था। अंग्रेजों का यह भी मानना था कि जंगलों से ना केवल बहुमूल्य खनिज प्राप्त किए जा सकते हैं, बल्कि जंगलों को कृषि योग्य भूमि में बदलकर उन्हें उपजाऊ खेत में बदला जा सकता है, जहां से भू-राजस्व तो प्राप्त होगा ही, साथ ही इस क्षेत्र में शांति और कानून व्यवस्था भी स्थापित हो सकेगी।

ब्रिटिश भू राजस्व व्यवस्था के विकसित होने से पूर्व, भारतीय परंपरा के अनुसार कृषि भूमि किसान की मानी जाती थी और वह उस भूमि के उत्पादन में से एक हिस्सा अपने राजा को देता था। मुगल बादशाह ने 1765 ईस्वी में अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार प्रदान कर दिए थे। यद्यपि लॉर्ड क्लाइव से लेकर वारेन हेस्टिंग्स तक इसमें बहुत अधिक परिवर्तन नहीं किये, बल्कि यह युग वास्तव में भू-राजस्व व्यवस्था के प्रयोग की प्रक्रिया का युग था। अभी भी पूर्व की भांति ही भू-राजस्व वसूल करने का दायित्व भारतीयों को ही सौंपा गया। धीरे धीरे कंपनी की नीति और नियत में परिवर्तन आया, अब भू-राजस्व की दर बढ़ा दी गई, जिसका प्रमुख उद्देश्य राजस्व से होने वाली आय को व्यापार-वाणिज्य में निवेश किया जाना था। साथ ही उस समय की मान्यता थी कि प्रशासन को संचालित करने के लिए और स्वयं के लाभ के लिए एकमात्र विकल्प भू-राजस्व व्यवस्था में अधिकाधिक वृद्धि करना था। बंगाल में अंग्रेजों ने भू-राजस्व की अनेक नीतियों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया था। 1772 ई. में भू-राजस्व वसूल करने के लिए पंचसाला पद्धति प्रारंभ की गई, जिसके अंतर्गत कलेक्टर नियुक्त

किए गए किंतु इस व्यवस्था से भी कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि इस व्यवस्था में ठेकेदार केवल अधिक से अधिक भू-राजस्व वसूल करने पर ध्यान दे रहे थे और कृषि का विकास ठप्प हो गया था। इन नीतियों का सबसे अधिक शिकार पहाड़िया आदिवासी हुए।

ब्रिटिश अभिलेखों से मालूम पड़ता है कि पहाड़िया लोग समय-समय पर पहाड़ों से उतर कर मैदानी किसानों पर आक्रमण करते थे, इन आक्रमणों के दो कारण थे एक तो जब उनके पास रसद की कमी हो जाती थी और दूसरा मैदानी क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए। यह पहाड़िया व्यापारियों के कारवां पर भी आक्रमण करते थे और इनसे बचने के लिए व्यापारियों के द्वारा पथ कर देकर और जमीदारों द्वारा पहाड़िया जनजाति के मुखियाओं को नियमित सुरक्षा कर देकर सुरक्षा तथा शांति व्यवस्था स्थापित की जाती थी। यहां यह उल्लेखनीय है कि यह पहाड़िया सभी बाहरी लोगों पर आक्रमण नहीं करते थे, बल्कि इनके बीच रहने वाले बाहरी लोगों जैसे लोहार, बढ़ई, नाई आदि को संरक्षण देते थे ना कि उन पर हमला करते थे।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अंग्रेजों ने भारत में जंगली परती जमीन को कृषि योग्य बनाने का अभियान चलाया, जिसका प्रमुख कारण भू -राजस्व प्राप्त करना और अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन करना था, इसके साथ ही अंग्रेज जंगलों में रहने वाले आदिवासियों को असभ्य, बर्बर, क्रूर, उपद्रवी और अपराधी मानते थे और उनका मानना था कि एक व्यवस्थित और स्थाई समाज की स्थापना के लिए आवश्यक है कि इन्हें स्थाई कृषि और अन्य व्यवसाय के लिए तैयार किया जाए। इसके लिए वारेन हेस्टिंग्स ने 1772 ई. में कैप्टन ब्लक के नेतृत्व में 800 सैनिकों की टुकड़ी भी भेजी थी। अपने इन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने पहाड़िया जनजाति का संहार करना प्रारंभ कर दिया। 1780 के दशक में भागलपुर के कलेक्टर आगस्टस क्लीवलैंड ने शांति व्यवस्था स्थापित करने के नाम पर पहाड़िया लोगों के मुखियाओं को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की, उन्हें प्रलोभन दिया और वार्षिक भत्ता के रूप में एक निश्चित धनराशि देना प्रारंभ किया। इस धनराशि के बदले मुखियाओं को अपने अधीन पहाड़ियाओं को स्थाई जीवन जीने और लूटमार छोड़ने के लिए तैयार करना था। पहाड़िया लोग शीघ्र समझ गए कि अंग्रेजों का उद्देश्य '**फूट डालो और राज करो**' का है। अतः उन्होंने अपने मुखियाओं की बात नहीं मानी और जो मुखिया अंग्रेजों से वार्षिक भत्ता लेने लगे उन्हें अपने ही समाज के लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा। अगस्टस क्लीवलैंड ने ही 1782 ई. में **पहाड़िया तीरंदाज वाहिनी** का गठन किया था, जिसका प्रमुख जबरा पहाड़िया को नियुक्त किया गया था, यद्यपि जबरा पहाड़िया एक कुख्यात डकैत के रूप में जाना जाता था और इसका आतंक पूरे क्षेत्र में था। चूंकि पहाड़ियां तीरंदाज वाहिनी के गठन में अंग्रेजों का योगदान था, इसलिए कुछ इतिहासकारों ने जबरा पहाड़िया को अंग्रेजों के देश भक्त के रूप में भी उल्लेख किया है, किंतु यह पूरा सच नहीं है, वह उनके अधीन नियुक्त जरूर हुआ था, किंतु वास्तविक सच्चाई यह है कि उसने अंग्रेजों की जब नियत में खोट देखा, तो वह अंग्रेजों का विद्रोही हो गया।

अंग्रेजों की इन नीतियों से पहाड़िया लोग चिंतित थे और अपने आप को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने पहाड़ों के भीतरी भागों में शरण ले रखी थी। अंग्रेजों की नीतियों से पहाड़िया लोग सशंकित हो गए और अंग्रेजों को भय और घृणा की दृष्टि से देखने लगे। उनका मानना था कि अंग्रेज जंगल और जमीन छीनकर उनके व्यक्तिगत जीवन को तबाह करने के लिए ही आए हुए हैं। अंग्रेजों का प्रतिकार करने के लिए तिलका मांझी ने पहाड़िया समुदाय को प्रोत्साहित करके संगठित किया और उन्हें गुरिल्ला युद्ध लड़ने के लिए तैयार किया। **जबरा पहाड़िया उर्फ तिलका मांझी** ने गुरिल्ला युद्ध प्रारंभ कर दिया और उसने 1784 में भागलपुर के कलेक्टर क्लीवलैंड की हत्या कर दी। इस

गुरिल्ला युद्ध में अधिकांश पहाड़िया मारे गए और अंत में कैप्टन आयरकूट तिलकामांझी को सुल्तानगंज से गिरफ्तार करने में सफल रहा। तिलका मांझी को सुल्तानगंज से लेकर भागलपुर तक चार घोड़ों के बीच हाथ-पैर बांधकर घसीटा गया, किंतु उसके हौसलों को तोड़ा नहीं जा सका, भागलपुर चौराहे में ही तिलकामांझी को बरगद के पेड़ में लटका कर फांसी दे दी गई। यह सार्वजनिक फांसी देने का पहला उदाहरण था। जिससे अन्य विद्रोही, विद्रोह करने की दोबारा हिम्मत ना करें।

समीक्षा:-

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजमहल पहाड़ियों के पहाड़िया लोगों ने अपने अस्तित्व, आजादी और अस्मिता की रक्षा के लिए अंग्रेजों से भारत में पहली बार संघर्ष करना प्रारंभ किया था। अंग्रेजों की कुदृष्टि राजमहल की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द पड़ी जंगली और परती भूमि पर पड़ी, वे चाहते थे कि इन पहाड़ियों के आसपास खाली पड़ी परती जमीन को कृषि भूमि में बदल करके मनमाना भू-राजस्व वसूल किया जाए और साथ ही अपने उपयोगी कृषि उत्पादों का भी उत्पादन कराया जाए। जबकि पहाड़िया लोगों का जीवन झूम कृषि पर निर्भर था और वे प्रकृति को नुकसान पहुंचाए बिना, केवल आवश्यक संसाधनों का ही सीमित मात्रा में उपभोग करते थे। अंग्रेजों द्वारा कृषि भूमि के विस्तार और कृषि भूमि पर लगाए गए भू-राजस्व के कारण ही पहाड़िया लोगों को गोरिल्ला संघर्ष करना पड़ा।

संदर्भ ग्रंथ:-

- डॉ कामेश्वर प्रसाद(2016) भारत का इतिहास, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स पटना
- प्रोफेसर विपिन चंद्र(1995), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- ग्रोवर बी एल और यशपाल (1994) आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन, एस चन्द एंड कंपनी लि. रामनगर नई दिल्ली
- शर्मा एल.पी. (14वां संस्करण), आधुनिक भारत का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा-3
- पांडे एस. के.(2014), आधुनिक भारत का इतिहास, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद
- http://prasannachoudhary.blogspot.com/2011/06/blog-post_29.html?m=1
- https://web.archive.org/web/20130918034400/http://www.ignca.nic.in/coilnet/jk030.htm
- (8)https://web.archive.org/web/20131213065007/http://www.pravasiduniya.com/sidhu-kanha-against-the-british-who-first-blew-the-bugle

Research Hub International Journal